Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

सतीविजय गद्यकाव्य में अलंकार योजना

डॉ॰ अरुणा शर्मा
प्रोफेसर, शोधनिर्देशिका
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र,भारत।

सुमन
शोधार्थी, संस्कृत,
पालि एवं प्राकृत विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र,भारत।

Article Info
Volume 4 Issue 3
Page Number: 24-34

Publication Issue :
May-June-2021

Article History
Accepted : 15 May 2021
Published : 30 May 2021

सारांश – कवि जयनारायण यात्री द्वारा रचित 'सतीविजय' गद्यकाव्य में अलंकार–योजना के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि काव्य में अलंकारों का प्रयोग सहज एवं प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल है । कवि ने अलंकारों का प्रयोग बलात् नहीं किया अपितु उनकी वाणी में यह कला स्वाभाविक रूप से सिद्ध है । कवि ने शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों के साथ–साथ दोनों प्रकार के अलंकारों के मिश्रित रूप 'उभयालंकार' का भी बहुत सुन्दर रूप में निबन्धन किया है । उन्होंने प्रस्तुत गद्यकाव्य में सुन्दर, सरल एवं यथावसर अलंकारों का प्रयोग कर–गद्यकाव्य को शोभायुक्त तथा समृद्ध रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है । प्रस्तुत गद्यकाव्य में अनुप्रास के नाना भेदों की छटा पदे–पदे विद्यमान है । अर्थालंकारों की योजना भी भाषा के प्रवाह में इस प्रकार निबद्ध है, जैसे नदी के प्रवाह में तरंगे । अलंकारों की इस सहज और स्वाभाविक योजना ने काव्य के कथाप्रवाह को अत्यन्त मनोरम और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है । अतः निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि कवि जयनारायण यात्री अलंकारयोजना में सिद्धहस्त हैं।
मुख्यशब्द – जयनारायण यात्री, सतीविजय, गद्यकाव्य,अलंकार,भाषा,काव्य।

कविता–कामिनी का श्रृंगार है – अलंकार योजना । जिस प्रकार कटक–कुण्डल आदि विभिन्न प्रकार के आभूषणों के प्रयोग से कामिनी के सौन्दर्य में वृद्धि होती है, उसी प्रकार उपमा, अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों के प्रयोग से कवितारूपी कामिनी का सौन्दर्य भी बढ़–जाता है । काव्य का शरीर शब्द और अर्थ रूप है । अतः कवि अलंकारों के प्रयोग से काव्य के शरीर रूप शब्द और अर्थ की ही शोभावृद्धि करके काव्य का चित्ताकर्षक रूप सहृदय सामाजिक के लिए प्रस्तुत करता है ।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ :

अलंकार शब्द का सामान्य अर्थ—आभूषण, श्रृंगार का साधन अथवा सौन्दर्यविशेषक तत्त्व है । व्युत्पत्ति के अनुसार 'अलंकार' शब्द अलम् पूर्वक √कृ धातु के साथ भाव एवं करण अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है ।

भावपरक व्युत्पत्ति के अनुसार अलंकार शब्द का अर्थ भूषण अथवा शोभा का भाव है ।

'अलंकृतिः अलंकारः' इसी अर्थ के अनुसार आचार्य वामन ने अलंकार को सौन्दर्य का पर्याय कहकर अलंकारयुक्त काव्य को ग्राह्य तथा अलंकारहीन काव्य को अग्राह्य कहा है ।[1]

करणपरक व्युत्पत्ति के अनुसार अलंकार का अर्थ है – सौन्दर्य का साधन । 'अलङ्क्रियतेऽनेन इति अलंकारः' अर्थात् जिस साधन के द्वारा काव्य को अलंकृत किया जाए, वह साधन अलंकार कहलाता है।[2]

वास्तविक रूप में अलंकार सौन्दर्य—वृद्धि के साधन ही हैं । काव्य में इनका प्रयोग भावों को सजाने तथा रमणीयता प्रदान करने के लिए किया जाता है । जिस प्रकार स्त्री के सहज सौन्दर्य को अधिक निखार देने वाले हार—कुण्डल आदि अलंकार कहलाते हैं, उसी प्रकार सरस काव्य को अधिक आकर्षक एवं परिष्कृत बना देने वाले तत्त्व को अलंकार कहते हैं ।

अलंकार की परिभाषा :

सभी काव्यशास्त्रियों ने अलंकार की परिभाषा भिन्न—भिन्न रूप में प्रस्तुत की है । सर्वप्रथम आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य के आत्मतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया । उन्होंने शब्द और अर्थ की वक्रता से युक्त उक्ति को अलंकार के रूप में परिभाषित किया।[3] आचार्य दण्डी[4] तथा अग्निपुराणकार[5] ने काव्य के शोभाकारी धर्मों को अलंकार का नाम दिया है । आचार्य मम्मट ने हार तथा बाजूबन्द आदि अलंकारों के समान काव्य की शोभा में वृद्धि करके काव्यकीआत्मा रस का उपकार करने वाले तत्त्वों को ही अलंकारों के रूप में परिभाषित किया है ।[6]

---

1. काव्यं ग्राह्यमलंकारात् । सौन्दर्यमलंकारः । का॰ अ॰ सू॰ वृ॰, 1.1.1
2. करणव्युत्पत्त्यापुनः अलंकारशब्दोऽयमुपमादिषु वर्तते । वही, 1.1.2
3. वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलङ्कृति ।
   वाचां वक्रार्थ शब्दोक्तिरलङ्काराय कल्पते ।। का॰ अ॰, 1.36
4. काव्य शोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते ।
   ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति ।। का॰ आ॰, 2.1
5. काव्य शोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते । अ॰ पु॰, 42.17
6. उपकुर्वन्ति तं सन्तं ये अंगद्वारेण जातुचित् ।
   हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ।। का॰ प्र॰, 8.67

आचार्य विश्वनाथ ने भी मम्मट के मत का अनुसरण करते हुए शोभा का अतिशय करने वाले, रसभाव आदि के उपकारक, शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म को अलंकार कहा है ।[7]

इस प्रकार ध्वनिवादी आचार्यों से पूर्व अलंकार को काव्य के अंगी रूप में प्रतिष्ठित किया गया लेकिन ध्वनिवादी आचार्यों ने काव्य की शोभा का आधायक तत्त्व मानकर अलंकारों को गौण/अंग रूप में स्थापित किया है । उनके अनुसार अलंकारों की योजना रस की अपेक्षा से ही होनी चाहिए । अतः अलंकार, शब्द और अर्थ का वह धर्म है, जो उन्हें लोक–व्यवहार के साधारण प्रयोग से अधिक सुन्दर बनाता है । वर्ण्य–वस्तु के रूप, गुण एवं क्रिया के प्रभाव में वृद्धि करता है, उसे स्पष्टता तथा लाघव के साथ व्यक्त करने में सहायक होता है ।

अलंकारों का महत्त्व :

काव्य पद्यरूप में हो अथवा गद्यरूप में, उसमें अलंकारों का विशिष्ट स्थान होता है । काव्य में अलंकारों का प्रयोग नवीन नहीं है अपितु वैदिक काल से ही काव्य को सुन्दर और शोभाधायक बनाने का प्रयास निरन्तर रूप से होता रहा है । अतः अलंकारों की महत्ता स्वतः सिद्ध है ।

सर्वप्रथम आचार्य भामह अलंकारों के महत्त्व को दर्शाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार कामिनी का मुख आभूषणों के बिना सुन्दर नहीं लगता, उसी प्रकार अलंकारों के बिना काव्य भी सुशोभित नहीं होता ।[8] आचार्य राजशेखर अलंकार की महत्ता को स्वीकार करते हुए इसे वेद का सातवां अंग मानते हैं । उनके अनुसार अलंकार वेद के अर्थ का उपकारक होता है तथा अलंकारों के अभाव में वेदार्थ की अवगति नहीं हो सकती ।[9] अतः वेदार्थ के परिज्ञान के लिए अलंकारों के स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है । आचार्य जयदेव अलंकारों को काव्य का नित्य धर्म स्वीकार करते हैं । उन्होंने बड़े दृढ शब्दों में उन कवियों के प्रति आक्रोश प्रकट किया है जो अलंकार से विहीन काव्य की सत्ता मानते हैं ।[10]

वस्तुतः अलंकार काव्य के आत्मतत्त्व के उत्कर्षाधायक तथा शब्दार्थ रूपी शरीर के अस्थिर धर्म ही हैं, जिनके प्रयोग से काव्य की अभिव्यक्ति में तीव्रता एवं भावों में प्रभावात्मकता आ जाती है।

अलंकार के भेद :

---

7. शब्दार्थयोरस्थिरा धर्माः शोभातिशायिनः ।
   रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ।। सा॰ द॰, 10.1

8. न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम् । का॰ अ॰, 1.12

9. उपकारत्वात् अलंकारः सप्तममंगमिति यायावरीयः ।
   ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानात् वेदार्थानवगतिः ।। का॰ मी॰, पृ॰ 4

10. अंगीकरोति च काव्यम् शब्दार्थावनलङ्कृती ।
    असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती ।। च॰ आ॰, 1.8

प्रायः सभी आचार्यों ने काव्य में शब्द और अर्थ की शोभा का आधायक मानते हुए अलंकार के दो ही भेद – शब्दालंकार और अर्थालंकार प्रतिपादित किए हैं तथा इन दोनों अलंकारों के मिश्रण से बनने वाले उभयालंकार को तृतीय भेद के रूप में प्रतिपादित किया हे । इस प्रकार अलंकार के मुख्य रूप से तीन भेद स्वीकार किए जाते हैं –

शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उभयालंकार ।

'सतीविजय' गद्यकाव्य में अलंकार–योजना :

कवि जयनारायणयात्री काव्य में अलंकारों की महत्ता से भली–भांति परिचित हैं । अतः उनकी रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से परिलक्षित होता है । उन्होंने बलात् अलंकार–योजना से काव्यगत सुषमा और सहज शोभा को क्लिष्ट नहीं होने दिया है । इसीलिए प्राचीन गद्यकाव्यों कादम्बरी, हर्षचरित, दशकुमारचरित आदि की भांति प्रस्तुत 'सतीविजय' गद्यकाव्य अलंकारों से बोझिल प्रतीत नहीं होता, अपितु सहज प्रयोग किए गए अलंकारों से काव्य की शोभा में वृद्धि हुई है । कवि ने प्रस्तुत गद्यकाव्य में शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उभयालंकार का सावसर स्वाभाविक प्रयोग किया है ।

प्रस्तुत गद्यकाव्य में मुख्यतया अनुप्रास तथा यमक शब्दालंकार तथ्य अर्थालंकारों में उपमा, मालोपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विभावना, विशेषोक्ति, विनोक्ति लोकोक्ति, अतिशयोक्ति, परिसंख्या, पर्याय, उदात्त, उत्तर, समाधि, दीपक, अर्थापत्ति, अर्थान्तरन्यास, कारणमाला, विरोध, स्वभावोक्ति, काव्यलिङ्ग, व्यतिरेक, अन्योन्य, तद्गुण अप्रस्तुत प्रशंसा, विषम, निर्दशना, अपह्नुति तथा परिकर आदि का प्रयोग किया गया है। उभयालंकार के रूप में संकर तथा संसृष्टि अलंकारों की भी सुन्दर योजना दृष्टिगत होती है । 'सतीविजय' में प्रयुक्त अलंकारों में से कतिपय, विशेष अलंकारों का विवेचन इस प्रकार है –

अनुप्रास : शब्दों की समानता को अनुप्रास अलंकार कहते हैं। जहां किसी काव्य में स्वरों की विषमता होने पर भी शब्दों अथवा व्यंजन वर्णों का सादृश्य अथवा समानता रहती है, उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं ।[11] आचार्य विश्वनाथ ने अनुप्रास के पांच भेदों का वर्णन किया है । छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अन्त्यानुप्रास और लाटानुप्रास ।[12] प्रस्तुत गद्यकाव्य में अनुप्रास अलंकार के छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास और अन्त्यानुप्रास की योजना पद–पद पर दृष्टिगत होती है । इनमें से छेकानुप्रास का वर्णन यहाँ पर प्रस्तुत है ।

छेकानुप्रास : जहाँ पर अनेक व्यंजन वर्णों के समूह की उसी क्रम तथा स्वरूप में आवृत्ति होती है, उसे छेकानुप्रास कहते हैं । स्वरों की विषमता के साथ एक ही स्वरूप के व्यंजन उसी क्रम से

---

11. अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् । सा॰ द॰, 10.3

12. अनुप्रासः प×चधा ततः । वही, 10.7

दूसरी बार आएं तो छेकानुप्रास कहलाता है ।[13] छेक शब्द का अर्थ है – चतुर पुरुष । चतुर पुरुषों के प्रयोग के योग्य होने के कारण ही इसे छेकानुप्रास कहते हैं ।
यथा –

तस्य च नृपतेरजस्य................त्रिभुवनभवनेषूत्तमः,.............. स्नानशीलरमणीतनुलग्नहरिचन्दनसौरभसुरभितः कासार,......... राजप्रासादश्चकाशे ।[14]

अर्थात् उस राजा अज का.........तीनों भुवनों के भवनों में उत्तम.......... स्नान करने वाली स्त्रियों के शरीर पर लगे हुए हरिचन्दन की सुगन्ध से सुगन्धित तालाब वाला..........राजमहल सुशोभित था ।

प्रस्तुत गद्यांश में 'त्रिभुवनभवनेषूत्तमः' पदसमूह में भ्, व्, न् व्यंजन वर्णों की उसी क्रम तथा स्वरूप से समानता है तथा स्वरों में विषमता है । पुनः 'सौरभसुरभितः' पदसमूह में स्, र्, भ् व्यंजन समूह की उसी क्रम तथा स्वरूप से आवृत्ति है एवं स्वरों की भिन्नता है । अतः यहाँ पर छेकानुप्रास अलंकार है ।

यमक :

जहाँ पर सार्थक शब्दों के भिन्न–भिन्न अर्थ होने पर स्वर–व्यंजन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति हो उसे यमक कहते हैं। इसमें कहीं पर एक पद सार्थक तथा दूसरा पद निरर्थक होने पर भी यमक अलंकार होता है ।[15]
यथा –

स्वपुरुहूर्म×जुलता गार्वजी ललितललितबिज्ञा
.....हरिणीनाम्नी देवांगना.....सा×जलिरगादीत् ।।[16]

अथात् अपनी सुन्दरता पर अभिमान करने वाली, सुन्दर हावभाव में कुशल–हरिणी नाम की अप्सरा...हाथ जोड़कर बोली ।

---

13. छेको व्यंजनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा । सा॰ द॰, 10.3
14. स॰ वि॰, 2/पृ॰ 24–25
15. सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहतेः ।
    क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।। सा॰ द॰, 10.08
16. स॰ वि॰, 4/पृ॰ 87

यहाँ पर 'ललित–ललित' पद की आवृत्ति हुई है । प्रथम ललित शब्द का अर्थ 'सुन्दर' तथा द्वितीय ललित शब्द का अर्थ 'हावभाव' है । सार्थक व्यंजनसमूह की आवृत्ति होने पर तथा अर्थ भिन्न होने पर यहाँ पर यमक अलंकार है ।

निदर्शना : वस्तुसम्बन्ध के सम्भव होने और असम्भव होने पर दोनों वाक्यार्थों के बीच बिम्बप्रतिबिम्बभाव की कल्पना करना निदर्शना अलंकार कहलाता है ।[17]

उदाहरणार्थ –

स यावदेव पितृपतिगोपितां दिशं प्रतिमुखं विदधाति तावदेव सेनापति सा×जलिखोचद्–युवराज । सा हरित् त्रिलोकविजयिना रावणेनाधिष्ठिता । स भवता कदापि जेयो न विद्यते –– तज्जयनं भुजाभ्यां समुद्रतरणमस्ति ।[18]

अर्थात् जब वह (दशरथ) दक्षिण दिशा की ओर मुख करता है तब सेनापति हाथजोड़कर कहता है कि युवराज उस दिशा पर त्रिलोक विजयी रावण का अधिकार है । उसको आप कभी भी जीत नहीं सकते । उसको जीतना तो भुजाओं से समुद्र पार करना है ।

प्रस्तुत गद्यांश में दोनों वाक्यार्थों अर्थात् त्रिलोकविजयी रावण को जीतना और 'भुजाओं से समुद्र पार करना' में सम्बन्ध अनुपपन्न है, किन्तु अन्त में इसकी विभ्रान्ति इस सादृश्य में होती है कि त्रिलोकविजयी रावण को जीतना उतना ही दुष्कर है, जितना भुजाओं से समुद्र पार करना । इस प्रकार दोनों वाक्यार्थों के बीच बिम्ब–प्रतिबिम्बभाव की कल्पना होने से यहाँ निदर्शना अलंकार है।

विनोक्ति :

जहां पर एक वस्तु के बिना दूसरी वस्तु शोभित अथवा अशोभित वर्णित की जाए, वहां विनोक्ति अलंकार होता है ।[19] विनोक्ति का अर्थ है – बिना शब्द के अर्थ की उक्ति । इसमें बिना, हीन, रहित आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है । शोभन अथवा अशोभन दोनों ही स्थितियों में यह अलंकार होता है ।

यथा – एकदा स चिन्ता जलनिधि निमग्नः कि×चच्चिन्तयामास। अहो! इन्दुमतीं बिना शून्यमिदं राजभवनं मां कर्तितुमशितुं च धावति।

---

17. सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वाऽपि कुत्रचित् ।
    यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत्सा निदर्शना ।। सा॰ द॰, 10.51
18. स॰ वि॰, 6/पृ॰ 158
19. विनोक्तिर्यदिनान्येन वा साध्वन्यदसाधु वा ।। सा॰ द॰, 10.56

अर्थात् एक बार वह (अज) चिन्ता रूपी समुद्र में डूबा हुआ सोच रहा था कि इन्दुमती के बिना सूना यह राजभवन मुझे काटने और खाने के लिए दौड़ता है ।

यहाँ पर इन्दुमती के अभाव में राजमहल की अशोभनता का वर्णन किया गया है । अतः विनोक्ति अलंकार है ।[20]

विरोध :

विरोध अलंकार में दो विरोधी पदार्थ एक ही आश्रय में वर्णित होते हैं । पहले विरोध की प्रतीति होती है, जैसे ही प्रसंगप्राप्त अर्थ स्पष्ट होता है तो विरोध हट जाता है । विरोधालंकार वहीं होता है, जहां एक देश में ही स्थित वस्तुओं का विरोध हो । आचार्य विश्वनाथ के अनुसार – जाति जहाँ पर जाति, गुण, क्रिया और द्रव्यों के साथ विरुद्ध भासित हो, गुण, गुणादिक तीन के साथ, क्रिया, क्रिया और द्रव्य के साथ एवं द्रव्य, द्रव्य के साथ विरुद्ध भासित हो तो वहाँ विरोधालंकार होता है ।[21] यह उपरोक्त रूप से दस प्रकार का होता है ।

यथा –

...नवनीतमृदुलोऽपि समराङ्गणेऽयसोऽपि दृढतरः........ अजनामधेयः पार्थिव आसीत् ।[22]

अर्थात् मक्खन सा कोमल होने पर भी युद्धभूमि में लोहे से अधिक मजबूत अज नाम का राजा था ।

यहाँ एक ही अज में स्थित 'मृदुलता' और 'दृढता' इन परस्पर विरोधी गुणों का वर्णन है, अतः यहाँ विरोध अलंकार है ।

अन्योन्य :

जब दो पदार्थ एक ही क्रिया को एक–दूसरे के प्रति प्रतिपादित करें अथवा परस्पर करें, तब अन्योन्य अलंकार कहलाता है ।[23]

यथा – स्वधर्मः प्राणपणेन रक्षणीयः । या जातिर्मानवश्च स्वधर्म हन्ति जहाति वा, स हतो धर्मस्तांत×चऽमूलाद् विनाश्य रसातलं गमयति।

---

20. स॰ वि॰, 5/पृ॰ 94

21. जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिः त्रिभिः ।

क्रिया क्रिया द्रव्याभ्या यद् द्रव्यं द्रव्येण वामिथः ।।

विरुद्धमेव भासेत् विरोधोऽसौ दशाकृतिः । सा॰ द॰, 10.68–69

22. स॰ वि॰, 2/पृ॰ 22

23. अन्योन्यमुभयोरेक क्रियायाः करणं मिथः । सा॰ द॰, 10.73

अर्थात् अपने धर्म की रक्षा प्राण देकर भी करनी चाहिए । जो मनुष्य अथवा जाति अपने धर्म को मार देता है या छोड़ देता है, वह मरा हुआ धर्म, उस जाति और मनुष्य को जड़ से नष्ट करके पाताल में पहुंचा देता है ।

यहाँ पर जाति और मानव द्वारा धर्महनन रूप क्रिया करना तथा विनष्ट धर्म के द्वारा जाति और मानव का हनन (विनाश) रूप क्रिया करना वर्णित है । अतः परस्पर एक ही (विनाश रूप) क्रिया करने का वर्णन होने से यहां अन्योन्य अलंकार है ।[24]

अपह्नुति :

जहाँ प्रकृत (उपमेय) का निषेध करके अन्य अर्थात् (उपमान) की स्थापना की जाती है, वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है ।[25] अपह्नुति का अर्थ है – गोपन या छिपाना । इसमें प्रकृत (उपमेय) को छिपाकर अप्रकृत (उपमान) का स्थापन किया जाता है ।

उदाहरणार्थ –

सतीविजय के सप्तम परिच्छेद में दशरथ और कौशल्या के विवाह के अवसर पर सिंहनियों की गर्जना में विवाहगीतों की स्थापना की गई है –

'सिंहीगणो गर्जनाव्याजेन विवाहगीतानि गायति ।'[26]

प्रस्तुत उद्धरण में शेरनियों की गर्जना ध्वनि (प्रकृत) का निषेध करके विवाहगीत (अप्रकृत) की स्थापना की गई है, अतः यहाँ अपह्नुति अलंकार है ।

पर्याय :

जहां पर एक वस्तु अनेकों में अथवा अनेक वस्तु एक में क्रम से निर्दिष्ट हो अथवा कही जाए तो पर्याय अलंकार होता है । एक वस्तु का अनेक में तथा अनेक वस्तुओं का एक में कथन होने से दो प्रकार का पर्याय अलंकार होता है ।[27]

यथा – एवं मधुमासं प्रशंसन्त्या अधस्ताद् प्रजन्त्या महिष्याः शिरसि विरपिनः कमनीयं पूर्णप्रफुल्लमरुणवर्णप्रदीप्तं मनोहरं प्रियपरिमलं पृथुकुसुममापतितम्। पुनस्तन्नवनीतकोमलकपोलं पीनपयोधरौ च स्पृशत् करमध्यगतं बभूव ।[28]

---

24. स॰ वि॰, 5/पृ॰131

25. प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः । सा॰ द॰, 10.38

26. स॰ वि॰, 7/पृ॰ 177

27. क्वचिदेकमनेकस्मिननेकं चैकगं क्रमात् ।

भवति क्रियते वा चेत्तदा पर्याय इष्यते ।। सा॰ द॰, 10.80

अर्थात् वसंत ऋतु की प्रशंसा करते हुए, नीचे से जाती हुई रानी के सिर पर वृक्ष से सुन्दर, खिला हुआ लाल रंग से चमकता हुआ, सुन्दर सुगन्ध वाला बड़ा फूल आ पड़ा । फिर वह मक्खन से कोमल गाल और ऊँचे स्तनों का स्पर्श करता हुआ हाथों में आ गया । यहां पर एक पदार्थ 'कुसुम' का रानी के सिर, गाल स्तनों से हाथ तक अनेक स्थानों पर क्रम से जाने पर पर्याय अलंकार दृष्टिगोचर होता है ।

समाधि :

भाग्यवश आई हुई किसी वस्तु के कारण यदि प्रस्तुत कार्य सुगम अथवा सुकर हो जाए तो समाधि अलंकार होता है ।[29] यथा–

सा खण्डिता तरिर्वहमाना तत्रैव प्रपन्ना, यत्र तटनीतटात् पयसि पतितेन विशालपादपेन सा रावणक्षिप्ता म×जूषा निरुद्धा आसीत् विधिवशात् तेषां खण्डिततरिखण्डं तमेव दारूपिटकमाश्लिषद् यस्मिन् सा कौशल्या निरुद्धाऽऽसीत् ।[30] अर्थात् वह टूटी हुई नौका बहती हुई वहां ही पहुंच गई, जहाँ नदी के किनारे से पानी में गिरे हुए विशाल वृक्ष ने वह रावण द्वारा फेंकी हुई पेटी रोकी हुई थी । भाग्यवश उनका, टूटा हुआ नौका का टुकड़ा उसी पेटी के साथ मिल गया, जिसमें कौशल्या बन्द थी । प्रस्तुत गद्यांश में दशरथ की टूटी हुई नौका का भाग्यवश उसी पेटी से मिलने पर, जिसमें कौशल्य बन्द है, दशरथ और कौशल्या का मिलन से विवाह रूप कार्य सुगम हो जाता है । अतः यहां पर समाधि अलंकार है ।

तद्गुण :

अपने गुणों को छोड़कर अत्यन्त उत्कृष्ट के गुणों का ग्रहण करने से तद्गुण अलंकार होता है ।[31] इसमें बलवत्तर पदार्थ के गुण को अल्प गुणवाला पदार्थ ग्रहण कर अपने गुण का त्याग कर देता है ।

यथा – मौक्तिकसमरदनावलि प्रभया सितीकृत–
वक्त्रारविन्द पुरो भ्राम्यद् भ्रमरो ।[32]

अर्थात् मोतियों के समान दान्तों की पंक्ति की कान्ति से जिसने मुखरूपी कमल के आगे घूमते हुए भौरों को सफेद कर दिया ।

---

28. स॰ वि॰, 2/पृ॰ 34
29. समाधिः सुकरे कार्ये दैवाद्वस्त्वन्तरागमात् । सा॰ द॰, 10.86
30. स॰ वि॰, 7/पृ॰ 174
31. तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुण ग्रहः । सा॰ द॰, 10.90
32. स॰ वि॰, 2/पृ॰ 22

प्रस्तुत उद्धरण में भ्रमरों के द्वारा अपने गुण कृष्ण वर्ण को छोड़कर दांतों की पंक्ति के श्वेत वर्ण (रूप अन्य के उत्कृष्ट गुण को) प्राप्त करने का वर्णन है, अतः यहाँ तद्गुण अलंकार है ।

उभयालंकार यद्यपि प्रस्तुत गद्यकाव्य में संकर एवं संसृष्टि दोनों उभयालंकारों की योजना दृष्टिगत होती है । यहाँ पर केवल संकर अलंकार का विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

संकर :

इसमें अनेक अलंकार इस प्रकार मिले रहते हैं कि उनको पृथक् नहीं किया जा सकता अर्थात् नीरक्षीर न्याय के अनुसार परस्पर मिले हुए अलंकारों को संकर कहते हैं । आचार्य विश्वनाथ ने संकर अलंकार के तीन भेदों का वर्णन किया है – एक तो जहाँ कई अलंकारों में अंगांगिभाव हो, दूसरा जहाँ एक ही आश्रय में अनेक अलंकारों की स्थिति हो तथा तीसरा जहाँ कई अलंकारों का सन्देह होता है ।[33]

यथा – ..... शोषितसकलसरित्सरोवरसलिलस्तनुतनुकृत तरंगिणी प्रवाहो, निखिलसंसृतिं दग्धुकाम इव दहनं वर्षयन्निव निदाघकालः समागत ।

अर्थात् सारी नदियों और तालाबों का पानी जिसने सुखा दिया है, जिसने नदियों का प्रवाह पतले शरीर वाला कर दिया है, मानों सारी सृष्टि को जलाने की इच्छा वाला, मानों आग बरसाता हुआ सा ग्रीष्म ऋतु का समय आ गया ।

प्रस्तुत गद्यांश में 'सकलसरित्सरोवरसलिलस्तनुतनुकृततरंगिणी प्रवाहो' पदसमूह में दन्त्य वर्णों 'स्' 'त' और 'न्' की अनेकशः आवृत्ति होने से श्रुत्यनुप्रास है । 'तनु–तनु' शब्द की आवृत्ति में प्रथम 'तुन' का अर्थ 'पतला' तथा दूसरे 'तनु' शब्द का अर्थ 'शरीर' है । अतः सार्थक व्यंजन समूह की आवृत्ति होने पर तथा अर्थ भिन्न होने पर यमक अलंकार है ।

यहाँ पर 'तनुतनुकृततरंगिणी' इस एक ही पदसमूह में परस्पर आश्रित श्रुत्यनुप्रास और यमक अलंकार की योजना में संकर अलंकार दृष्टिगोचर होता है ।

33. अङ्गङ्गित्वेऽलंकृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ ।
संदिग्धत्वे च भवति संकरः त्रिविधः पुनः ।। सा॰ द॰, 10.99

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्निपुराण, सं॰ आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1966
2. अलंकारानुशीलन, डॉ॰ राजवंश सहाय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1970
3. अष्टाध्यायी, (पाणिनि) चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी, 1976
4. काव्यप्रकाश, (मम्मट) सं॰ श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ ।
5. काव्यमीमांसा (राजशेखर) सं॰ गंगा सागरराय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी ।
6. काव्यादर्श (दण्डी) सं॰ आचार्य रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी ।
7. काव्यालंकार (भामह) सं॰ आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
8. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति (वामन) सं॰ डॉ॰ रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
9. चन्द्रालोक (जयदेव) डॉ॰ सुरेन्द्रदेव शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत ऑथ्फस, वाराणसी ।
10. सतीविजय (जयनारायणयात्री) 3जी स्कूल कम कनाल एरिया नीलोखेड़ी, करनाल, हरियाणा ।
11. साहित्यदर्पण (विश्वनाथ) साहित्यभण्डार मेरठ, 1997